International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

द्विवेदी युगीन निबंधों में भावात्मकता

डॉ० कृष्णा देवी
अस्सिटैंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक।
फोन नं0 : 9416484744

साहित्यकार का अनुभव साहित्य–रचना के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। 'स्व' की सीमाओं को लाँघकर वह अनुभव ग्रहण करता है और उन्हीं अनुभवों को परिष्कृत कर प्रकट करता जाता है। अतः अनुभूति और अभिव्यक्ति ही साहित्य के मुख्य आधार सिद्ध होते हैं। अभिव्यक्ति की अलौकिकता साहित्य को 'साहित्यत्त्व' प्रदान करती है तो अनुभूति की गहराई उसका प्राण मानी जाती है। यह भी सत्य है कि साहित्यकार की अनुभूति गहरी, उदात्त, गंभीर और मूलगामी न हो, तो अभिव्यक्ति की अलौकिकता कोई अर्थ नहीं रखती।

मनुष्य मूलतः सामाजिक प्राणी है। समाज की विभिन्न परम्पराएँ, पद्धतियाँ, उस पर प्रभाव डालती रहती हैं। शिक्षा, संस्कार, अध्ययन, चिन्तन, मनन – ये भी मनुष्य के व्यक्तित्त्व को एक विशिष्ट सांचे में ढालने में बड़ा योगदान प्रस्तुत करते रहते हैं। लेखक भी इस स्थिति के लिए अपवाद नहीं है। साहित्य में निबंध लेखक और पाठक के मध्य सबसे छोटा, सरल और सीधा राजपथ है। निबंधों में भावों और विचारों की प्रधानता तथा शैली की रमणीयता मिलती है। इसमें गंभीरता आवश्यक है। मर्यादा इसका गौरव है। गद्य इसमें प्रौढ़ता प्राप्त करता है। निबंध, लेखक के हृदय का मुक्त संगीत है। इतना ही नहीं, निबंध वह स्वच्छ दर्पण है, जिसमें हम लेखक के यथार्थ चित्र को देख सकते हैं। विषय–विवेचन और चयन की जितनी अधिक स्वच्छन्दता एवं

स्वतन्त्रता निबंधों में रहती है उतनी कहीं नहीं, साथ ही सागर को गागर में भरने का दृढ़ आग्रह भी रहता है। इन परिस्थितियों में निबंधों में लाघवता, आत्मीयता, बन्धुता, गंभीरता, सजीवता, भावात्मकता एवं प्रभावोत्पादकता अपेक्षित है।

साहित्यकार किसी भी विषय या वस्तु का विवरण अत्युत्तम तथा आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करता है। उसका अनुभव सर्व संबद्ध बनकर अनेकों के अनुभवों को वाणी देता है। अनुभवों की यही अभिव्यक्ति ललित साहित्य में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है, ''सामान्य तौर पर लोग इसी अभिव्यक्ति की भंगिमा या पद्धति को ही 'शैली' कहते हैं।''[1] 'शील' से 'शैली' की उत्पत्ति मानी गयी। प्राचीन संस्कृत वाङमय में कभी–कभी शैली का प्रयोग होता था। ''प्रायेणाचार्याणामिंय शैली यत् सामान्येनाभिधाम विशेषेण विवृणोति।''[2] अतः शास्त्र में शैली का अर्थ होता था किसी सूत्र के आख्यान की पद्धति। हिन्दी निबंध साहित्य में वर्णनात्मक, विवरणात्मक, विचारात्मक, हास्य–व्यंग्यात्मक, प्रतीकात्मक, भावात्मक आदि शैलियों को अत्युत्तम प्रयोग मिलता है।

द्विवेदी–युगीन निबंधों में भावात्मक शैली का प्रयोग विशेष रूप से हुआ है। भावों का वेगवान प्रवाह रचनाकार को अपने साथ बहा ले जाता है। रचनाकार की भाषा में भावों के अनुकूल ही वेग, प्रवाह, चंचलता आ जाती है। भाषा में लय और लालित्य भावों के कारण ही उपस्थित होते हैं। भावात्मक शैली से युक्त निबंध भी भाषा गीत के समान लयबद्ध, कभी बिखरी हुई, कभी अस्पष्ट, कभी निजी बातचीत के समान होती है। आत्मीयता उसका मुख्य वैशिष्ट्य मानना चाहिएए। यह शैली पाठकों को उनके व्यक्तित्व से जुदा कर लेखक के व्यक्तित्व में विलीन कर देती है। लेखक–पाठक की

तल्लीनता ही इस शैली की यशविस्ता है। ''भावात्मक निबंधों में मानव अनुभूतियाँ जितनी शाश्वत, चिरन्तन और प्रबल होगी एवं लेखक उन्हें जितनी तन्मयता और कुशलता से चित्रित करेगा उतना ही स्थायी तथा हृदयग्राही प्रभाव उसका होगा।''[3]

द्विवेदी–युग के निबंध साहित्य में भावात्मक शैली का प्रयोग अनेक निबंधकारों ने किया। इनमें स्वयं युग–नेता आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं० माधवप्रसाद मिश्र, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, पं० गोविन्द नारायण मिश्र, अध्यापक पूर्ण सिंह, बाबू गुलाबराय, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, माखन लाल चतुर्वेदी आदि का विशेष योगदान रहा है। इन्होंने हिंदी के निबंध साहित्य को अपनी बहुमूल्य रचनाओं से संवारा और सजाया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी इस युग के सर्वश्रेष्ठ प्रेरणा–श्रोत थे। इनके कुल निबंध लगभग 250 हैं। विविध विषयों पर लिखे गए, इनमें से कुछ निबंध 'विचार–विमर्श', 'साहित्य सीकर', 'साहित्य संदर्भ', 'समालोचना समुच्चय', 'रसज्ञ रंजन' और 'लेखांजलि' नामक पुस्तकों में संग्रहीत है। 'अनुमोदन का अंत', 'सम्पादक की विदाई', 'कालिदास के समय का भास', 'महाकवि माघ का प्रभात वर्णन'[4] आदि भावात्मक निबंधों की श्रेणी में आते हैं। द्विवेदी जी का मुख्य रूप संपादक, भाषा सुधारक और आलोचक का था। उनके निबन्धों पर इन विविध रूपों का प्रभाव स्पष्ट लक्षित है। उनके अनेक निबन्धों की सृष्टि 'सरस्वती' को सामग्री प्रदान करने के फलस्वरूप ही हुई थी। यथा ''भारत क्या तुम्हें कभी अपने पुराने दिनों की भी याद आती है? क्या तुम्हें इस बात का स्मरण स्वप्न में भी होता है कि किसी समय तुम ज्ञान, विज्ञान, सम्मान आदि सभी विषयों में रत्नोपमान थे? धन, जन और प्रभुता में भी तुम अपना सानी न रखते थे। स्वर्ण और

रजत ही की नहीं, हीरों तक की एक नहीं अनेक खाने तुम्हारी ही रत्नागर्भा भूमि के भीतर भरी हुई पड़ी थी। जिन किनकी हीरक मणियों को पाकर इस समय यूरोप के कुछ देश अपने को परम सौभाग्यशाली समझ रहे हैं वे सब तुम्हारी ही दी हुई हैं।''[5]

'दंडदेव का आत्मा निवेदन', 'गोपियों की भगवत् भक्ति', 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' आदि कुछ ऐसे निबंध है जिनमें रसमयता है, लालित्य है, भावात्मकता है। 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' में करूणा जनक प्रसंगों द्वारा एक उपेक्षिता नारी की दुःख–दशा का भावपूर्ण चित्रण है ''हाय वाल्मीकि! जनकपुर में तुम उर्मिला को सिर्फ एक बार वैवाहिक वधू वेश में दिखाकर चुप हो बैठे। अयोध्या आने पर ससुराल में उसकी सुधि यदि आपको न आई थी, तो न सही, पर क्या लक्ष्मण के वन–प्रयाग समय में भी उसके दुःखाश्रुमोचन करना आपको उचित न जंचा? रामचन्द्र के राज्याभिषेक की जब तैयारियाँ हो रही थी, तब राजान्तःपुर ही क्यों, सारा नगर नन्दनवन बन रहा था, उस समय नवला उर्मिला कितनी खुशी मना रही थी, सो क्या आपने नहीं देखा?''[6]

माधव मिश्र जी के अधिकांश निबंध भावात्मक शैली से ही युक्त हैं। व्यास पूर्णिमा, विद्यार्थी और राजनीति, सब मिट्टी हो गया, होली, परीक्षा, क्षमा, बड़ा बाजार, रामलीला आदि निबंधों में भाव धारा तेजी से उमड़कर स्वच्छन्द गति से बहती जाती हुई दिखायी देती है। यह गतिशीलता बड़ी आकर्षक और कर्ण–सुखद है ''देखों मां, इस कुरुक्षेत्र में कितनी कठोर मृतिका हो गयी है। भीष्म देव का पतन–क्षेत्र किन पाषाणों में परिणत हो गया। कपिल, गौतम की शेषशैया का कितना ऊँचा आकार हो

गया है। उज्जयिनी की विजयिनी भूमि में कैसी मधुमयी धारा चल रही है। अहा हा! तुम्हारे अंग में किस प्रकार पादस्पर्श करें? मां! मां तुम्हारे प्रत्येक परमाणु में जो रत्नकण हैं, वे अमूल्य है, क्षय रहित है और अतुल है।''[7]

भारतीयता मिश्र जी के रोम–रोम में बसी थी, इसलिए तीर्थ–त्यौहारों पर लिखते समय वे अधिक–भावविभोर होकर लिखते हैं। कई बार वे पाठकों के साथ तन्मय होकर बातचीत करने लगते हैं। राम–लीला में अयोध्या की आज की स्थिति पर उदास दुखित होकर उन्होंने लिखा – ''आज हमारे यहाँ की सुख सामग्री सब नष्ट प्राय हो रही है, सहस्त्रों वर्षों से हम दीन–हीन के होते चले आते हैं, पर तो भी राम से हमारा संबंध बना है। उनके पूर्व पुरुषों की राजधानी अयोध्या को देखकर हमें रोना आता है। जो एक दिन भारत के नगरों का शिरोमणि था, हाय, आज वह फैजाबाद जिले में एक गांव मात्र रह गया है। जहाँ एक से एक धीर धार्मिक–महाराज राज्य करते थे, वहाँ आज बैरागी तथा थोड़े–से दीन दशा दलित हिन्दू रह गए हैं।''[8]

मिश्र जी तल्लीन होकर लिखते थे और इसी कारण पाठक को अपने साथ बहा ले जाने में सफल हो जाते थे। भावों का बिम्ब पाठक के सम्मुख उपस्थित करने में उन्हें सफलता मिली थी। इनके सभी निबंधों पर भावुकता की ही छाप अधिक है। यथा 'राज राजेश्वरी का परलोक गमन' में विक्टोरिया रानी की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए उन्होंने लिखा है – 'सुतरां सब लोगों की आँखों में आज मानों प्रभाकर का अस्त हो गया। चारों ओर घोर अन्धकार छा गया। केवल भारत में ही नहीं, समस्त बृटिश राज्य ही में विषाद की कालिमा फैल गयी। शोक से आपाभर सब लोग अधीर हो गए।

चारों ओर से हा! हन्त, हा! हलारम! की ध्वनि आने लगी। भारतवर्ष में ऐसा सर्वव्यापी शोक पहले कहीं देखने में नहीं आया।''[9]

देश और धर्म मिश्र जी के दो प्रमुख प्रेरणा केन्द्र थे। दोनों के प्रति उनके मन में उत्कट राग था। उनसे संबंधित बातों पर लिखते हुए वे भावुकता में डूब जाते थे। अर्थात्, यह भावुकता सस्ती या उछली नहीं थी। उसमें गहराई, तर्क, ओज का अद्भुत मिश्रण रहता है। उनकी क्रोध की अभिव्यक्ति में दुःख एवं निराशा की अभिव्यक्ति में भी एक लय है। भावाकुल होकर वे लिखते हैं, ''कभी हम लोग भी सुख से दिन बिता रहे थे, कभी हम भी भूमण्डल पर विद्वान और वीर शब्द से पुकारे जाते थे, कभी हमारी कीर्ति भी दिग्दिशान्त व्यापिनी थी, कभी हमारे जय–जयकार से आकाश गूंजता था और कभी बड़े–बड़े सम्राट हमारे कृपा–कटाक्ष की भी प्रत्याशा करते थे – इस बात का स्मरण करना भी अब हमारे लिए अशुभ चिन्तक हो रहा है।''[10]

सरदार पूर्णसिंह जी भी द्विवेदी युग के एक प्रसिद्ध निबंधकार हैं जिनके निबंधों में भावात्मकता विद्यमान है। उनके निबंध केवल भावात्मक नहीं, आत्यंतिक भावावेश में लिखे हुए जान पड़ते हैं। स्वामी राम तीर्थ का उनपर विशेष प्रभाव था। इनकी भाषा विविध भावों को लेकर गर्जन के साथ क्षीप्र गति से सरपट दौड़ती हुई मालूम पड़ती है। इस भाव–विभोरता, भावावेश, उद्दीपकता एवं तेजस्विता में पटु वक्ता पूर्ण सिंह का अद्भुत योगदान है। उनकी शैली अत्युत्कृष्ट वक्तृत्व के सभी गुणों से मंडित है, ''जिस समय आचरण की सभ्यता संसार मे आती है, उस समय, मनुष्य को वेद–ध्वनि सुनाई देती है, नर–नारी पुष्पवत खिलते जाते हैं, प्रभाव होता जाता है, प्रभात का गजर बज

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Vol ume 04 Is s ue 12
September 2017

जाता है, नारद की वीणा अलापने लगती है। ध्रुव का शंख गूंजने लगता है, प्रहलाद का नृत्य होता है, शिव का डमरू बजता है। कृष्ण की बांसुरी की धुन प्रारम्भ हो जाती है।''[11]

पूर्ण सिंह जी के अनेक निबंध 'तलवार की छाया में स्वर्ग बसता है', 'भारत तो केवल दिल की बस्ती है', 'मनुष्य पूजा ही ईश्वर पूजा है', 'आचरण की सभ्यता' आदि में हृदय बुद्धि का साथ लेकर चला है। इनके निबंधों में तर्क और भावुकता का मर्मस्पर्शी संयोग मिलेगा। वे अपनी हर बात काव्यगत उपमाओं, रूपकों और उद्धरणों से संवारकर कहते हैं, ''हल चलाने वाले अपने शरीर का हवन किया करते हैं। खेत उनकी हवनशाला है। उनके हवन कुण्ड की ज्वाला की किरणें चावल के लम्बें और सफेद दोनों के रूप में निकलती है। गेहूँ के लाल दाने इस अग्नि की चिनगारियों की डालियाँ सी हैं। मैं जब अनार के फल देखता हूँ, तब मुझे बाग के माली का रूधिर याद आता है।''[12]

वाचकों में भावोद्रेक करने के लिए वातावरण की ऐसी निर्मिति पूर्ण सिंह करेंगे कि वाचक बिना कहे, बिना सोचे, चुपचाप उनके शब्दों की बांह गहकर चलता चला जाएगा। 'कन्यादान' में कन्यादान का कारूणिक दृश्यांकन किसी भी सहृदय पाठक को द्रवित कर देगा, तो एक निर्धन, असहाय अबला विधवा के रातभर बैठकर कुरता सीने की कहानी किसी के भी हृदय को हिला देगी, ''गांठ की एक कमीज को एक अनाथ विधवा सारी रात बैठकर सीती है, साथ ही साथ वह अपने दुख पर रोती भी है – दिन को खाना न मिला। रात को भी कुछ मयस्सर न हुआ। अब वह एक टांके पर आशा

करती है कि कमीज कल तैयार हो जाएगी। तब कुछ तो खाने को मिलेगा। जब वह थक जाती है तब ठहर जाती है। सुई हाथ में लिए हुए है, कमीज घुटने पर बिछी हुई है, उसकी आँखों की दशा उस आकाश की जैसी है, जिसमें बादल बरस कर अभी–अभी बिखर गए हैं।''[13]

पटुवक्ता एक साधारण वाक्य बोलकर उसके तौल पर अन्य अनेक वाक्य उपस्थित कर देता है। पूर्ण सिंह में भी यह प्रकृति लक्षित होती है, ''जब पैगम्बर मुहम्मद ने ब्राह्मण को चीरा और उसके मौन आचरण को नंगा किया तब सारे मुसलमानों को आश्चर्य हुआ कि काफिर में मोमिन किस प्रकार सुप्त था। जब शिव ने अपने हाथ से ईसा के शब्दों को परे फेंककर उसकी आत्मा के नंगे दर्शन कराए तब हिन्दू चकित हो गए कि वह नग्न करने अथवा नग्न होने वाला उनका कौन–सा शिव था? हम तो एक–दूसरे में छिपे हुए हैं।''[14]

इनके निबंध केवल भावना–प्रधान नहीं, इनकी भावुकता आला दर्जे की वैचारिकता को एवं कलात्मकता को लेकर चलती है। भावात्मक शैली का ऐसा आकर्षक और लुभावना रूप उस युग के अन्य किसी भी निबन्धकार के पास नहीं था जैसा सरदार पूर्ण सिंह के पास था।

बाबू गुलाब राय जी के अनेक निबंध भावात्मक निबंधों की कोटि में आते हैं। 'विश्व प्रेम और विश्व सेवा', 'स्वयंभू', 'सुधारकों का सुधार', 'दुःख', 'चिर बसंत', 'भक्ति की रीति निराली है' शुद्ध भावात्मक निबंध कहे जाते हैं। उनके 'विश्व प्रेम और विश्व सेवा' में उन्होंने यह बताने का प्रयास किया है कि व्यष्टि का समष्टि से संबंध विश्वप्रेम

अथवा विश्व सेवा द्वारा ही संभव है। यह संबंध व्यष्टि में उदारता और व्यापकता ला देता है। 'स्वयंभू सुधारकों का सुधार' में साहित्य सुधारकों में किन–किन गुणों की आवश्यकता होती है, इसका विवेचन है। 'चिर बंसत' में बंसत को आशा और उल्लास को जगाने वाला कहा गया है। 'भक्ति की रीति निराली है' में भक्तिकालीन कवियों के उद्धरणों द्वारा भक्ति की अनन्यता तथा अलौकिकता का वर्णन किया गया है। साधारण बातों को लक्षणा एवं वक्रोक्ति के सहारे प्रस्तुत करने का उनका ढंग भी निराला था, ''सूर और तुलसी की भाँति मैं यह तो नहीं कह सकता कि मेरे दोषों को स्वयं माता शारदा भी सिन्धु की दावत में काले पहाड़ की स्याही घोलकर पृथ्वी के कागज पर कल्प–वृक्ष की कलम से भी नहीं लिख सकती है। इतने भारी झूठ के मोल में दैन्य खरीदने की मुझ में सामर्थ्य नहीं है।''[15]

'चोरी कला के रूप में 'कम्पोजीटर स्तोत्र', 'खट्टे अंगूर', 'पट परिवर्तन' आदि निबंधों के विषय भाव–तरलता एवं रोचकता के साथ प्रस्तुत किए गए, वह आकर्षक है। 'खट्टे अंगूर' में 'जीवन बीमा' की अनावश्यकता को प्रतिपादित करते हुए वे लिखते हैं, ''बीम कंपनी वाले शायद इस सिद्धांत को नहीं जानते कि रोगी लोग ही चिरंजीवी होते हैं क्योंकि उनको रोग के कारण अपना जीवन नियमित रखना पड़ता है। मुझे आशा है कि भले स्कूल के लड़के की भांति अपना जीवन नियमित रखकर जान–बूझकर आग में न कूदूँगा और हनुमान बाना, अश्वत्थामा, लोमश ऋषि, भगवान भुवन भास्कर सूर्यदेव और भूतभावन मृत्युन्जय महादेव कृपा करके दीर्घजीवी बना देंगे। रहा बाल–बच्चों का

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Vol ume 04 Is s ue 12
September 2017

प्रश्न, उसके लिए मैंने संतोष कर लिया है कि 'पूत सपूत तो क्यों धन संचय, पूत–कपूत तो क्यों धन संचय'। जीवन बीमा के अंगूर मुझे खट्टे प्रतीत होते हैं।''[16]

ये निबंध उनकी जीवन मान्यताओं के दिग्दर्शक हैं। 'स्व' के माध्यम से 'पर' को देखने की कला का विकास हिन्दी निबंध में शुरू ही हुआ होगा, तब के ये निबंध हैं। हास्य और व्यंग्य का पुट इन निबंधों में निरंतर मिलेगा।

द्विवेदी युग में भावात्मक शैली साधारण नहीं थी, उसमें वैचारिकता भी समाविष्ट थी। नाटकीय भावुकता का जो प्रदर्शन पूर्ववर्ती निबंधकारों में कहीं–कहीं पर प्राप्त होता था, वह भी इस युग में बहुत कम स्थानों पर मिलता है। भावात्मक शैली का सर्वोत्तम रूप इस युग में सरदार पूर्ण सिंह ने प्रकट किया। धारा शैली और विक्षेप शैली का प्रयोग इस युग के लगभग सभी श्रेष्ठ निबंधकारों ने अपने भावात्मक निबंधों में किया। भावों के प्रगटीकरण में भाषा की अस्त–व्यस्तता पूर्ववर्ती युग में लक्षित होती थी। इस युग में भाषा में अत्यधिक सुधार हुआ, वह पर्याप्त परिष्कृत और व्याकरण सम्मत बन गयी। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का योगदान इस दृष्टि से अर्पूव था।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ० मु०ब० राहा, हिंदी निबंधों का शैलीगत अध्ययन, पृ० 43
2. वही, पृ० 43
3. शंकरदयाल चौऋषि, द्विवेदी युग की हिन्दी गद्य शैलियों का अध्ययन, पृ० 177
4. महावीर प्रसाद द्विवेदी, साहित्य संदर्भ, पृ० 104

5. सरस्वती (भारतवर्ष में हीरे की खाने), 29:67, पृ० 642

6. महावीर प्रसाद द्विवेदी, कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता, पृ० 82

7. माधव मिश्र, निबन्धावली, चतुर्थ खण्ड, सब मिट्टी हो गया, पृ० 53–54

8. वही, तृतीय खण्ड, रामलीला, पृ० 16

9. माधव मिश्र, निबन्धमाला, जीवन चरित, पृ० 200

10. माधव मिश्र, निबन्धावली, तृतीय खण्ड, रामलीला, पृ० 12

11. सरदार पूर्ण सिंह के निबंध, आचरण की सभ्यता, पृ० 131–132

12. सरदार पूर्ण सिंह के निबंध, मजदूरी और प्रेम, पृ० 133

13. वही, पृ० 137–138

14. सरदार पूर्ण सिंह के निबंध, आचरण की सभ्यता, पृ० 131

15. गुलाबराय, मेरी असफलताएँ, पृ० 183

16. वही, पृ० 113